स्वास्थ्य सेवाओं में योजनाएं नहीं, गुणवत्ता चाहिए

भारत में राजनीतिक स्तर पर स्वास्थ्य क्षेत्र की चर्चाएं पूरे विश्व से कुछ अलग जान पड़ती है। पश्चिमी देशों में लोगों की पहुँच से बाहर वाली स्वास्थ्य सेवाओं (जिनमें निजी अस्पताल शामिल हैं) पर लगाम कसने के लिए सरकार पर लगातार दबाव बना रहता है। स्वास्थ्य को बाजार से जोड़कर देखने को चुनौती देने या उसे स्वीकार करने का दृष्टिकोण तब ही पनप सकता है, जब दी जाने वाली स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता पर कोई सवाल उठे और भारत के राजनीतिक परिदृश्य में सत्ता पक्ष या विरोधी से इस प्रकार का कोई सवाल ही नहीं उठाया जाता। यदि तर्क-वितर्क किया भी जाता है तो केवल इस बात पर कि कहीं कोई ऐसा काम न उठा लिया जाए, जो स्वास्थ्य के बाजार को नुकसान पहुँचा दे। वास्तव में तो यह विचार करने योग्य विषय है कि आखिर कोई भी सरकार स्वास्थ्य प्रदाताओं को उत्तरदायी बनाए बगैर कब तक और कितना स्वास्थ्य खर्च वहन कर सकेगी?

सन् 1950 में देश के कुल स्वास्थ्य खर्च का 5 से 10 प्रतिशत ही निजी स्वास्थ्य सेवाओं की झोली में जाता था। परन्तु आज स्थिति बिलकुल उलट चुकी है। 1980 से लेकर अब तक निजी अस्पतालों की संख्या आठ गुणा बढ़ चुकी है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण रिकार्ड से पता चलता है कि 24 प्रतिशत ग्रामीण एवं 18 प्रतिशत शहरी जनता स्वास्थ्य खर्च के चलते ऋण में फंसी हुई है। पाँच में से कैंसर के दो मरीज धन के अभाव में ईलाज नहीं करवा पा रहे हैं।

प्रधानमंत्री द्वारा चलाई गई जन आरोग्य योजना में प्रति गरीब परिवार प्रतिवर्ष दिए जाने वाले पाँच लाख रुपये चाहे यूपीए सरकार के 30,000 रूपए की तुलना में ज्यादा हों, परन्तु अक्सर बीमारियों के लिए पाँच लाख रुपये की रकम भी बहुत कम साबित होती है। हृदय रोग या कैंसर जैसी बीमारियां तो सम्पन्न परिवारों की माली हालत को भी खराब कर देती हैं। यही कारण है कि सेवाओं के क्षेत्र में मुख्य समस्या धन की नहीं, बल्कि गुणवत्ता की है।

यूरोप के सरकारी अस्पतालों में अगर निजी अस्पतालों जैसी उत्कृष्ट स्वास्थ्य सेवा प्रदान की जा सकती है, तो हमारे देश में क्यों नही दी जा सकती। यूरोप में आम जनता को स्वास्थ्य पर केवल 10 प्रतिशत खर्च करना पड़ता है। परन्तु भारतीयों को 63 प्रतिशत खर्च करना पड़ता है।

हमारे देश में निजी एवं सरकारी अस्पतालों की कुल संख्या 79,000 है। दुर्भाग्यवश, इनमें से मात्र 700 अस्पताल ही चिकित्सा सेवा के राष्ट्रीय मान्यता बोर्ड के पैमाने पर खरे उतरते हैं। सरकारी अस्पतालों में गुणवत्ता के अभाव में अधिकांश जनता उन्हीं अस्पतालों की ओर भागती है, जो मान्यता प्राप्त हैं। ये ऐसे निजी अस्पताल हैं, जो प्रधानमंत्री जनआरोग्य योजना से जुड़ना नहीं चाहते। यही वे अस्पताल हैं, जो अपनी सुविधाओं और गुणवत्ता के चलते तमाम ऐसे लोगों को अपनी ओर खींचते रहेंगे, जो इनका खर्च वहन नहीं कर सकते।

अलग-अलग स्रोतों से पता चलता है कि रोगियों का 80 प्रतिशत खर्च निजी तौर पर दवाइयां खरीदने और पैथोलाजी टेस्ट करवाने में होता है।

देश में स्वास्थ्य पर तर्क-वितर्क या चर्चा हुए बहुत समय बीत चुका है। बीच में हम प्राथमिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षात्मक उपायो की बात कर रहे थे। लेकिन अब बात अस्पताल में भर्ती होने और रोग निवारण की होने लगी है। इन सबके बीच विश्व स्वास्थ्य संगठन का 'सबके लिए स्वास्थ्य' का नारा फीका पड़ गया है।

जब तक हम रोग निवारण को ही ध्येय बनाकर चलेंगे, तब तक स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता को अनदेखा ही करते रहेंगे। यही कारण है कि हमारे सरकारी अस्पतालों को उत्कृष्ट बनाए जाने के भी कोई प्रयास नहीं किए जाएंगे।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित दीपांकर गुप्ता के लेख पर आधारित। 6 अक्टूबर, 2018

AFEIAS